षष्ठ परिशिष्ट

न्याय

संस्कृत का शब्द 'न्याय', प्रक्रिया, रीति, नियम, योजना, औचित्य, विधि, समता, धार्मिकता, अभियोग, निर्णय, नीति, तर्क आदि अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है। प्रस्तुत प्रसंग में 'न्याय' से अभिप्राय उन आभाणकों या लोकोक्तियों का है जिनका प्रयोग वर्ण्य विषय के स्पष्टीकरण के लिए दृष्टान्त रूप में किया जाता है। नीचे कुछ ऐसे न्यायों के अर्थ और प्रयोग अकारादि क्रम से प्रस्तुत किये जा रहे हैं जिनका प्रयोग प्रायः संस्कृत-ग्रन्थों में और यदा-कदा हिन्दी रचनाओं में भी दृष्टिगोचर होता है। आशा है, पाठक इनका आशय हृदयंगम कर इनके उचित प्रयोग से स्व-निबन्धों तथा संवादों को रोचक तथा विशद बनाने में समर्थ हो सकेंगे।

१. अजातपुत्रनामोत्कीर्तनन्याय—इस न्याय का अर्थ है, पुत्रजन्म से पहले ही उसका नाम घोषित करने की कहावत। बच्चे की उत्पत्ति से पूर्व तो यह जानना भी दुष्कर होता है कि पुत्र होगा वा पुत्री। इसलिए पहले ही उसका नाम बताते फिरना बहुत बड़ी मूर्खता माना जाता है। इसी प्रकार असिद्ध कार्य से सम्बन्धित भावी बातों की घोषणा करना अन्याय्य होता है। यथा—यद्यपीदानीं यावत् परीक्षापरिणामोऽपि न घोषितस्तथापि रामेणाग्रिमकक्षायाः पुस्तकानि क्रीतानि। अजातपुत्रनामोत्कीर्तनं ह्येतत्।

२. अन्धगजन्याय—अन्धगजन्याय अर्थात् अंधों और हाथी का दृष्टान्त। कुछ अंधों के मन में हाथी का आकार-प्रकार जानने की इच्छा उत्पन्न हुई। एक ने उसकी सूँड छुई और समझा कि वह सर्पवत् होता है। दूसरे ने उसकी टाँग टटोली और सोचा कि वह स्तम्भ-समान होता है। इसी प्रकार जहाँ किसी वस्तु के आंशिक ज्ञान से उसके पूर्ण स्वरूप का मिथ्या अनुमान किया जाता है, वहाँ यह न्याय व्यवहृत होता है। जैसे—

तदेतदद्वयं ब्रह्म निर्विकारं कुबुद्धिभिः।
जात्यन्धगजदृष्ट्येव कोटिशः परिकल्प्यते॥ (नैष्कर्म्यसिद्धिः २।९३)

३. अन्धचटकन्याय—अन्धचटकन्याय अर्थात् प्रज्ञाचक्षु द्वारा चिड़िया के पकड़े जाने की कहावत। यह न्याय घुणाक्षरन्याय का पर्याय है। अन्धा वैसे तो किसी चिड़िया को नहीं पकड़ सकता, संयोगवश उसके हाथ आ जाए तो बात दूसरी है। इसी प्रकार आकस्मिक घटनाओं के लिए इस न्याय का प्रयोग किया जाता है। जैसे—'सम्यग् जानामि कृष्णचन्द्रं, नासौ मेधावी न च परिश्रमी, यत्तु स उच्चपदं प्राप्तवान् तत्तु अन्धचटकन्यायेनैव।'

४. अन्धदर्पणन्याय—इस न्याय का अर्थ है, अन्धे को दर्पण दिखाने की कहावत। दर्पण चक्षुष्मान् के लिए ही उपयोगी होता है, प्रज्ञाचक्षु के लिए नहीं। किसी के लिए वस्तुविशेष की व्यर्थता सूचित करने के लिए यह न्याय प्रयुक्त किया जाता है। यथा—

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति॥ (हितोपदेश ३।११५)

५. अन्धपरम्परान्याय—अन्धपरम्परान्याय अर्थात् अन्धे के पीछे अन्धों के चलने की कहावत। इस न्याय का प्रयोग वहाँ किया जाता है जहाँ सामान्य जन अग्रगामी का अनुगमन बिना सोचे-विचारे ही करने लगते हैं और परिणाम-रूप में दुःख उठाते हैं। हिन्दी के 'भेड़िया-धँसान'

तथा 'भेड़चाल' मुहावरे इसी के समानार्थक हैं। उदाहरण—'विरलविरला एव जना जगति सविवेकमाचरन्ति प्रायस्त्वन्धपरम्परैवावलोक्यते।'

६. अरण्यरोदनन्याय—उक्त न्याय का अर्थ है, निर्जन में रोने की कहावत। ग्राम नगर आदि में रोनेवाले व्यक्ति से उसका कष्ट पूछा जाता है और उसे नष्ट करने का उद्योग भी किया जाता है। परन्तु सुनसान स्थान में रोना तो सर्वथा व्यर्थ है। इसी प्रकार किसी व्यर्थ कार्य के लिए या किसी क्रूर के समक्ष प्रार्थना के समय पर यह न्याय होता है। यथा—'अरण्यरोदनमेव धनाढ्येभ्यः साहाय्ययाचनं प्रायशो भवति।'

७. अरुन्धतीप्रदर्शनन्याय—अरुन्धतीप्रदर्शन न्याय अर्थात् अरुन्धती नक्षत्र दिखाने का न्याय। इसकी व्याख्या स्वामी शंकराचार्य ने इस प्रकार की है—'अरुन्धतीं दिदर्शयिषुस्तत्समीपस्थां स्थूलां ताराममुख्यां प्रथममरुन्धतीति ग्राहयित्वा, तां प्रत्याख्याय पश्चादरुन्धतीमेव ग्राहयति।' अर्थात् किसी को अरुन्धती दिखाने का इच्छुक व्यक्ति पहले उसके समीपवर्त्ती किसी बड़े नक्षत्र को ही अरुन्धती बताता है और उसके बाद वास्तविक अरुन्धती को दिखाता है जिसका प्रकाश मन्द होता है। इस प्रकार जहाँ किसी सूक्ष्म वस्तु के स्पष्टीकरणार्थ पहले किसी स्थूल वस्तु को बताकर निषेध किया जाता है, वहाँ 'अरुन्धतीनक्षत्रन्याय' का प्रयोग होता है। यथा—'अयमेव सूर्यो देव इति पूर्वमुद्दिश्य तत्पश्चात्—वास्तविको देवस्तदन्तर्वर्त्तीति अरुन्धती-प्रदर्शनन्यायेन गुरुः शिष्यं ज्ञापयति।'

८. अशोकवनिकान्याय—अशोकवनिकान्याय अर्थात् अशोक-नामक वृक्षों की वाटिका का न्याय। रावण ने अपहृत सीता को अशोकवाटिका में रखा था परन्तु यह कहना कठिन है कि अन्यत्र कहीं न रख कर वहीं क्यों रखा। इसी प्रकार जहाँ किसी कार्य की निष्पत्ति के अनेक समान उपायों में से किसी एक का प्रयोग किया जाए, परन्तु यह न बताया जा सके कि अन्यों को छोड़ उसी को क्यों प्रयुक्त किया गया है, वहाँ 'अशोकवनिकान्याय' व्यवहृत होता है। जैसे—'प्रायो निर्विवेकः स्वामिनः स्वसेवकान् अशोकवनिकान्यायेन विविधकार्येषु प्रवर्तयन्ति।'

९. अश्मलोष्टन्याय—अश्मलोष्टन्याय अर्थात् पत्थर और ढेले का न्याय। जिस प्रकार मिट्टी का ढेला रूई से कठोर होता है और पत्थर से कोमल, उसी प्रकार कोई मनुष्य अपने से छोटों की अपेक्षा तो महान् होता है और बड़ों की अपेक्षा क्षुद्र। उदाहरण—'अस्मिन् संसारे सर्वं सापेक्षमश्मलोष्टवत्; न हि किमपि अत्यन्तमुत्कृष्टमपकृष्टं वा कथयितुं पार्यते।'

१०. अहिकुण्डलन्याय—अहिकुण्डलन्याय अर्थात् साँप की कुण्डलाकार स्थिति का न्याय। साँप स्वभावतः कुण्डली मार कर बैठता है; इसके लिए उसे प्रयास नहीं करना पड़ता। इसी प्रकार जहाँ किसी पदार्थ के स्वाभाविक धर्म का उल्लेख किया जाता है, वहाँ इस न्याय का प्रयोग होता है। जैसे—'अहिकुण्डलवत् स्वाभाविकं हि कवेः काव्यं न हि तत्र तस्य महाप्रयासस्यापेक्षा।'

११. आकाशमुष्टिहननन्याय—इस न्याय का शब्दार्थ है आकाश को मुक्के से पीटने की कहावत। जैसे आकाश को मुक्कों से पीटना असंभव है, वैसे ही किसी को असंभव कार्य करते देख इस उक्ति का प्रयोग किया जाता है। यथा—'आकाशमुष्टिहननमेव तवायमुद्योगो प्रधानमन्त्रि-पदप्राप्तये।'

१२. आम्रसेकपितृतर्पणन्याय—इस न्याय का अर्थ है, आम सींचने और पितरों के तर्पण करने की कहावत। आशय वही है जो हिन्दी की कहावत 'एक पंथ दो काज' का है। जहाँ एक क्रिया से दो प्रयोजनों की सिद्धि अभीष्ट हो वहाँ इस न्याय का प्रयोग न्याय्य है। यथा—'संसत्सदस्या आम्रसेकपितृतर्पणन्यायेन राष्ट्रसेवामपि कुर्वन्ति, पर्याप्तं वेतनं चापि प्राप्नुवन्ति।'

१३. आशामोदकतृप्तन्यायः—इस न्याय का अर्थ है—प्रत्याशित लड्डुओं से तृप्त मनुष्य का दृष्टान्त। लड्डू खाने पर ही प्रसन्नता का प्रकाशन उचित है। जो मनुष्य काल्पनिक लड्डुओं से तृप्ति का अनुभव कर मुदित होता है, वह सयाना नहीं माना जाता। सो वास्तविक और काल्पनिक प्रसन्नता में भेद करना ही समीचीन है। जैसे—को नाम व्यवहारपटुर्मानवो जगत्याशामोदकैस्तृप्तो दृश्यते।

१४. इषुकारन्यायः—इस न्याय का अर्थ है, बाण बनानेवाले का दृष्टान्त। यह न्याय महाभारत के शान्तिपर्व के १७८ वें अध्याय के निम्नलिखित श्लोक पर आधृत है—'इषुकारो नरः कश्चिदिषावासक्तमानसः। समीपेनापि गच्छन्तं राजानं नावबुद्धवान्॥' भाव यह कि एक बाणनिर्माता बाण-निर्माण में इतना निमग्न था कि वह पास से जाते हुए राजा को भी न देख सका। इसी प्रकार की एकाग्रचित्तता के लिए यह न्याय व्यवहृत होता है। यथा—'विद्याव्रतः स्वग्रन्थाध्ययन इत्थं निमग्न आसीद् यदिषुकारन्यायेन कक्षायामागतमध्यापकमपि न ज्ञातवान्।'

१५. इषुवेगक्षयन्यायः—इस न्याय का अर्थ है—बाणवेग के नाश का दृष्टान्त। धनुष से फेंके हुए बाण की गति क्रमशः क्षीण होती जाती है और अन्ततः समाप्त हो जाती है। इसी प्रकार जहाँ किसी पदार्थ में कारणवशात् जात क्रिया आदि का क्रमशः ह्रास और अन्त में विनाश हो जाता है, वहाँ यह न्याय प्रयुक्त होता है, यथा—'इयं सृष्टिरिषुवेगक्षयन्यायेन कालेन स्वयमेव प्रलयमुपैति।'

१६. उत्खातदंष्ट्रोरगन्यायः—उक्त न्याय का अर्थ है, निर्दन्त किये हुए सर्प का दृष्टान्त। दाँत उखाड़ देने पर सर्प की भयंकरता नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार जहाँ किसी घातक पदार्थ के अनिष्टकर अङ्ग का निवारणकर उसकी घातकता नष्ट कर दी जाती है, वहाँ इस न्याय का व्यवहार होता है। यथा—'इन्द्रप्रदत्तशक्त्या घटोत्कचं हत्वा कर्णः पाण्डवेभ्य उत्खातदंष्ट्रोरगवत् निरुपद्रवः संजातः।'

१७. उष्ट्रलगुडन्यायः—उक्त न्याय का अर्थ है—ऊँट और लकड़ी का दृष्टान्त। ऊँट पर लकड़ी का भार प्रायः लादा जाता है। आवश्यकता के समय उन्हीं में से एक लकड़ी निकालकर ऊँट को (उष्ट्रचालक) पीट भी देता है। इसी प्रकार जहाँ विरोधी की युक्ति से ही विरोधी की उक्ति का खंडन कर दिया जाये अथवा वैरियों के उपकरणों से ही वैरियों का नाश कर दिया जाये, वहाँ यह न्याय व्यवहृत होता है। जैसे—'सशक्तो गृहस्थ उष्ट्रलगुडन्यायेन चौरशस्त्रेणैव चौरं गतासुमकरोत्।'

१८. ऊषरवृष्टिन्यायः—इस न्याय का अर्थ है, बंजर में वर्षा का दृष्टान्त। भूमि उर्वरा हो तो वृष्टि सफल होती है। ऊषर में बरसना न बरसना बराबर है। इसी प्रकार जहाँ कोई कार्य सर्वथा बेकार हो वहाँ यह न्याय प्रयुक्त होता है। यथा—'इमाः सुधास्यन्दिन्यः सूक्तयोऽरसिकेभ्य ऊषरवृष्टिवन्निष्फलाः।'

१९. एकवृन्तगतफलद्वयन्यायः—उक्त न्याय का अर्थ है, एक डंठल पर लगे दो फलों की उक्ति। जैसे एक डंठल पर कभी-कभी दो भी फल लग जाते हैं, वैसे ही जब श्लेष आदि के बल से कोई शब्द दो अर्थ देता है या एक क्रिया फल-युग्म की साधिका होती है, तब यह न्याय व्यवहृत होता है। यथा—'एकवृन्तगतफलद्वयन्यायेन देवदत्त आङ्ग्लदेशमध्यपश्यद् भारतीयबालचराणां प्रतिनिधित्वमपि चाकरोत्।'

२०. कदंबकोरक(गोलक)न्यायः—कदंबकोरकन्याय अर्थात् कदंब की कलियों का न्याय। कहा जाता है कि कदंब की सब कलियाँ एक-साथ विकसित हो उठती हैं। इसी प्रकार जहाँ

कुछ व्यक्ति एकदम उठ खड़े हों या सब लोग एक साथ ही कार्य में जुट जायँ वहाँ इस न्याय का व्यवहार किया जाता है। यथा—'श्रीकृष्णचन्द्रमवलोक्य कदम्बकोरकन्यायेन प्रहृष्टा बभूवुः पाण्डवाः।'

२१. कफोणिगुडन्यायः—उक्त न्याय का शब्दार्थ है कोहनी और गुड़ की कहावत। यदि किसी की कोहनी पर कुछ गुड़ लगा दिया जाय और उसे जिह्वा से चाटने को कहा जाय तो वह अपने उद्योग में कदापि सफल न होने के कारण उपहासास्पद बनेगा। इसी प्रकार इस उक्ति का प्रयोग तरसानेवाली परन्तु अलभ्य वस्तु के विषय में होता है। यथा—'सरोवरे पतितं प्रतिबिम्बं वीक्ष्य कफोणिगुडन्यायेन चन्द्रग्रहणाय प्रयतते शिशुः।'

२२. कम्बलनिर्णेजनन्यायः—अर्थ है—कम्बल स्वच्छ करने का दृष्टान्त। कई बार मनुष्य कम्बल की मिट्टी झाड़ने के लिए उसे अपने पाँव पर झटकते हैं। इस एक क्रिया के दो फल होते हैं। कम्बल भी स्वच्छ हो जाता है और पाँव भी झाड़े जाते हैं। इस प्रकार यह न्याय हिन्दी के 'एक पंथ दो काज' का समानार्थक है। उदाहरण—'ह्यः सायमहं भ्रमणार्थं नागच्छम्, प्रदर्शनीक्षेत्र एवाभ्रमम् एवं कम्बलनिर्णेजनन्यायेन भ्रमणमपि जातं, नवज्ञानञ्चाप्युपलब्धम्।'

२३. करिबृंहितन्यायः—इस न्याय का अर्थ है—हाथी की चिंघाड़ का न्याय। प्रश्न होता है, 'चिंघाड़' के साथ 'हाथी' शब्द के प्रयोग की आवश्यकता नहीं क्योंकि 'चिंघाड़' शब्द हाथी की चीख के लिए ही प्रयुक्त होता है। उत्तर यह है कि ऐसे वाक्यों में फ़ालतू प्रतीत होने वाला शब्द विशिष्टता का सूचक होता है। यहाँ 'करि' शब्द मस्त या प्रबल हाथी के लिए व्यवहृत हुआ है। ऐसे ही अवसरों पर जहाँ कोई शब्द व्यर्थ प्रतीत होता हुआ भी विशिष्टता-सूचक हो, यह न्याय प्रयुक्त होता है। यथा–'किं कवेस्तस्य काव्येन किं काण्डेन धनुष्मतः। परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः॥ इति अस्मिन् श्लोके 'कवेः' इति पदं करिबृंहितन्यायेन प्रयुक्तम्।'

२४. कालतालीयन्यायः—काकतालीयन्याय अर्थात् कौए और ताड़ के फल की कहावत। एक कौआ ताड़ के वृक्ष पर बैठा ही था कि एकाएक ऊपर की शाखा से उसका भारी फल टूट कर कौए के सिर पर आ लगा जिससे वह मर गया। इस प्रकार की आकस्मिक घटना के लिए यह न्याय प्रयुक्त होता है। यथा—'अपहृतं ममेदं पुस्तकं काकतालीयन्यायेन पुनरधिगतमापणात्।'

२५. काकदधिघातकन्यायः—इस न्याय का शब्दार्थ है—दही को बिगाड़ने वाले कौओं का दृष्टान्त। आशय यह है कि जब किसी को कौओं से दही की रक्षा करने के लिए कहा जाता है तब वह रक्षक कुत्तों आदि से भी दही को बचाता ही है। इसलिए जहाँ एक वस्तु अनेक का प्रतिनिधित्व करती है, अर्थात् उपलक्षण होती है, वहाँ यह न्याय व्यवहृत होता है। यथा—'अश्लीलोऽयं मदनमोहनाख्यो न्यासो नाध्येतव्य इति तातेनोपदिष्टः सुपुत्रोऽन्यानपि कुग्रन्थान्नाधीते काकदधिघातकन्यायेन।'

२६. काकदन्तगवेषणन्यायः—काकदन्तगवेषणन्याय अर्थात् कौए के दाँत की खोज का न्याय। चिड़िया के दूध तथा शश के सींग के समान कौए के दाँत नहीं होते। इसलिए इस न्याय का प्रयोग वहाँ किया जाता है जहाँ कोई किसी नितान्त निरर्थक कार्य के लिए उद्योगशील हो। उदाहरण—'सामान्येषु सार्वजनिकपुस्तकालयेषु पुरातनग्रन्थरत्नानामन्वेषणं तु काकदन्तगवेषणमेव।'

२७. काकाक्षिगोलकन्यायः—काकाक्षिगोलकन्याय अर्थात् कौए की आँख के डेले का न्याय। जैसे कि कौए के पर्याय 'एकाक्षः', 'एकदृष्टिः' आदि संस्कृत शब्द से व्यक्त होता है कि लोगों का यह विश्वास रहा है कि कौआ दो आँखें रखता हुआ भी देखता एक ही आँख से है। तात्पर्य यह है कि उसे जिधर देखना होता है, उधर की आँख में उसकी पुतली चली जाती है। इसी

प्रकार इस न्याय का व्यवहार वहाँ होता है। जहाँ वाक्य के किसी शब्द का अन्वय एक से अधिक तरफ़ किया जाय अथवा कोई व्यक्ति आवश्यकतानुसार एक से अधिक पक्षों से सम्बन्ध रखे। यथा—'बलिनोर्द्विषतोर्मध्ये वाचात्मानं समर्पयन्। द्वैधीभावेन वर्त्तेत काकाक्षिवदलक्षितः॥' (कामन्दकीय नीतिसार : ९।२४)

२८. कुल्याप्रणयनन्यायः—शब्दार्थ है—कूलनिर्माण का न्याय। किसान लोग अपने खेतों की सिंचाई के लिए ही नदी-नालों से कूल निकालते हैं। परन्तु प्यास लगने पर उसमें से पानी पी भी लेते हैं। इसी प्रकार जहाँ एक उद्देश्य से किये हुए कार्य से दूसरा कार्य भी सिद्ध कर लिया जाय वहाँ इस न्याय का प्रयोग करते हैं। यथा—'सद्भावेन देशसेवायां रता नेतारः कदाचित् कुल्याप्रणयनन्यायेन संसत्सदस्या अपि जायन्ते।'

२९. कूपमंडूकन्यायः—इस न्याय का अर्थ है कूएँ के मेढक की कहावत। कूएँ का मेढक कूएँ में रहता है, इसलिए कूएँ से विस्तृत या विशाल स्थान का अनुमान नहीं कर सकता। इस न्याय का प्रयोग उस अनुभवहीन व्यक्ति के लिए किया जाता है जिसका पालन-पोषण संकुचित वातावरण में हुआ हो और जो सार्वजनिक जीवन तथा मानव जाति की गतिविधि से अनभिज्ञ हो। यथा—'अद्य खलु देशभक्तोऽपि कूपमंडूक एव मन्यते युगधर्मस्य 'वसुधैव कुटुम्बकम्' इति लक्षणात्।'

३०. कूपयंत्रघटिकान्यायः—कूपयंत्रघटिकान्याय अर्थात् अरहट की घड़ियों (लोटों) का न्याय। अरहट की माला के साथ बँधे हुए लोटों की दशा समान नहीं होती। जब कुछ लोटे नीचे पानी से भरते हैं, तभी ऊपर के लोटे रिक्त होते हैं। कुछ पूर्ण लोटे एक ओर से ऊपर को आते हैं तो कुछ रिक्त नीचे को जाते हैं। संसार में मनुष्यों के भाग्य की दशा भी इसी प्रकार भिन्न-भिन्न है। इसी अर्थ में इस न्याय का प्रयोग यों होता है—'कूपयन्त्रघटिका इव अन्योऽन्यमुपतिष्ठन्ते रायः।'

३१. क्षीरनीरन्यायः—इस न्याय का अर्थ है—दूध और पानी का दृष्टान्त। जब दूध और पानी परस्पर मिल जाते हैं तब यह जानना दुष्कर होता है कि उसमें दूध या पानी कितना और कहाँ है। इसी प्रकार जब दो या अधिक पदार्थों में घनिष्ठ सम्बन्ध बताना हो तब दूध-पानी की उपमा दी जाती है। यथा—'क्षीरनीरन्यायेन संगतानामेव मित्राणां मैत्री श्रेयस्करी भवति।'

३२. गगनरोमन्थन्यायः—इस न्याय का अर्थ है, आकाश की जुगाली या पागुर करने का न्याय। यदि कोई पशु नीले आकाश को घास का मैदान मानकर मुँह हिलाता हुआ यह समझने लगे कि घास की जुगाली कर रहा हूँ तो उसका यह उद्योग नितान्त निष्फल होगा। इसी प्रकार के निरर्थक उद्योग के विषय में इस न्याय का प्रयोग होता है। जैसे—'लोकसेवां विना शाश्वतयशोऽभिलाषो ननु गगनरोमन्थ इव।'

३३. गड्डुरिकाप्रवाहन्यायः—इस न्याय का अर्थ है भेड़ियाधसान। यदि भेड़ों के झुंड में से एक भेड़ नदी आदि में गिर जाए तो शेष भेड़ें भी रोके नहीं रुकतीं और नदी में कूद पड़ती हैं। इसी प्रकार जहाँ लोग समझाने पर भी सत्पथ का अनुसरण न करें और अन्धाधुन्ध किसी के पीछे चलते जाएँ, वहाँ यह न्याय प्रयुक्त होता है। जैसे—'न जातु गड्डुरिकाप्रवाहं विचरन्ति केसरिणः।'

३४. गुडजिह्विकान्यायः—उक्त न्याय का अर्थ है, गुड़ को जिह्वा पर लगाने की कहावत। प्रायः बालक कड़वी दवाई प्रसन्नतापूर्वक नहीं पीते। जब उनके हित के लिए उन्हें वह पिलानी अनिवार्य होती है तब बुद्धिमान् मनुष्य पहले उनकी जिह्वा पर गुड़ का लेप कर देते हैं इससे औषध की कड़वाहट लुप्त या न्यून हो जाती है। इसी प्रकार जब किसी मनुष्य को किसी दुष्कर कार्य में प्रवृत्त करना होता है तब कोई प्रलोभन आदि दे दिया जाता है। ऐसे ही अवसर इस न्याय के

प्रयोगार्थ उपयुक्त होते हैं। जैसे—'न हि लोकाः प्रायशो विना गुडजिह्विकां दुष्करकर्मसु प्रवर्तन्ते।'

३५. **घट्टकुटीप्रभातन्याय:**—घट्टकुटीप्रभातन्याय अर्थात् चुंगी की चौकी के समीप सबेरा होने का न्याय। चुंगी से बचने के लिए गाड़ीवान आदि रात को उन मार्गों से निकलने का यत्न करते थे जिनसे चुंगी देने से बच जायँ। परन्तु कभी-कभी दुर्भाग्यवश प्रभात वहाँ हो जाता था जहाँ चुङ्गी की चौकी समीप होती थी। इस प्रकार उनके किये-कराये पर पानी फिर जाता था। इस कहावत का प्रयोग ऐसे ही अवसरों पर किया जाता है जिन पर परिहार्य वस्तु अवश्य ही समक्ष आ जाती है। यथा—'कानिचिद् वस्तून्येकाक्येव क्रेतुमहं मध्याह्ने आपणमगच्छम्, परन्तु घट्टकुटीन्यायेन मोहनस्तत्र मां विफलमनोरथं व्यदधात्।'

३६. **घुणाक्षरन्याय:**—घुणाक्षरन्याय अर्थात् घुन या किसी अन्य कीड़े द्वारा लकड़ी आदि में कोई अक्षर बन जाने का न्याय। घुन आदि कीड़े लकड़ी, पुस्तक के पन्ने आदि को खाते रहते हैं। कभी-कभी उनके खाने से कोई अक्षर-सा बन जाता है, जिसे देख कौतुक होता है। इसी प्रकार दैवयोग से होने वाली बातों के लिए इस न्याय का व्यवहार होता है। पूर्वोक्त अन्धचटक-न्याय का आशय भी इसी प्रकार का है। यथा—'प्राचीनहस्तलिखितग्रन्थान्वेषणाय गतेन मया तत्र 'विमाननिर्माणम्' अपि घुणाक्षरन्यायेनाधिगतम्।'

३७. **चन्दनन्याय:**—इस न्याय का अर्थ है, चन्दन के तेल की उपमा। यदि शरीर के किसी एक भाग पर चन्दन के तेल की बूँद या चन्दन का लेप लगाया जाए तो उसके आह्लादक प्रभाव का समग्र शरीर में अनुभव होता है। इसी प्रकार जहाँ एकत्र स्थित पदार्थ व्यापक प्रभाव डाले वहाँ इस न्याय का व्यवहार होता है। यथा—'चन्दनन्यायेन प्रसरति दिग्दिगन्तं युगा-युगञ्च महात्मनां कीर्तिः।'

३८. **चौरापराधान्माण्डव्यनिग्रहन्याय:**—इस न्याय का अर्थ है, चोरों के अपराध पर माण्डव्य को दण्ड देने की कहावत। महाभारत के आदिपर्व में ऋषि अणीमाण्डव्य के मौनव्रत से सम्बन्धित तप की कथा आती है। जब वे तपोमग्न थे तब चोर, चुराई हुई सम्पत्ति के सहित उनके आश्रम में आ छिपे। राज-कर्मचारियों ने चोरों के साथ उन्हें भी पकड़ लिया और लगे सूली पर चढ़ाने। अन्त में मुनिजी छोड़ तो दिये गये परन्तु सूली की अणी के शरीर में रह जाने के कारण अणीमाण्डव्य कहलाने लगे। इसी प्रकार जहाँ 'करे कोई और भरे कोई' का व्यवहार होता है वहाँ उक्त न्याय प्रयुक्त होता है। जैसे—'कदाचित्तु नृपः कुख्यातदुष्टापराधेन सर्वानेव ग्रामवासिनो चौरापराधमाण्डव्यनिग्रहन्यायेन दण्डयति।'

३९. **छत्रिन्याय:**—उक्त न्याय का अर्थ है, छातेवालों की कहावत। आशय यह है कि यदि किसी जाते हुए जन-समुदाय में अनेक लोगों ने छत्रियाँ तानी हुई हों तो हम उन सबको 'छाते वाले लोग' कह देते हैं चाहे सबके पास छत्रियाँ न भी हों। इसी प्रकार जहाँ कुछ एक के सम्बन्ध में कही हुई बात सब पर चरितार्थ कर दी जाती है, वहाँ इस न्याय का व्यवहार उचित होता है। जैसे—'पुरा देवा राहुं सुरमेव मेनिरे छत्रिन्यायेन।'

४०. **जामातृशुद्धिन्याय:**—इस न्याय का अर्थ है—जमाई-कृत पुनरीक्षण की कहावत। मेरुतुंग के 'प्रबन्धचिन्तामणि' में कहानी यों दी गई है कि विक्रमादित्य ने राजकुमारी के लिए वर ढूँढ़ने का काम वररुचि को सौंपा। राजकुमारी ने वररुचि से पढ़ते समय एक दिन उनकी अवज्ञा की थी, इसलिए चतुराई से वररुचि ने एक मूढ़ को राजा का जामाता बना दिया। वररुचि के उपदेशानुसार जामाता चुप ही रहता था परन्तु राजकुमारी ने परीक्षार्थ एक पुस्तक उसे दोहराने को दी। उसने अक्षरों के ऊपर के बिन्दु और मात्राएँ नखछेदिनी से मिटा डालीं। कुमारी पहचान गई कि यह तो कोई चरवाहा है। तब से मूर्ख से शोधन-कार्य कराने के सम्बन्ध

में यह न्याय चल पड़ा है। यथा—'केनचित् अयोग्यजनैः कारितं कार्यं जामातृशुद्धिवदुपहासास्पदमेव भवति।'

४१. **तिलतण्डुलन्यायः**—उक्त न्याय का अर्थ है—तिल और चावल की उपमा। दूध और पानी भी मिलते हैं तथा तिल और चावल भी। परन्तु प्रथम मेल में दूध-पानी का पार्थक्य अज्ञेय होता है, द्वितीय में स्पष्ट। तिल-चावल की तरह जहाँ मेल तो हो परन्तु दोनों पदार्थ पृथक्-पृथक् प्रतीत भी होते हों, वहाँ तिलतण्डुलन्याय का प्रयोग किया जाता है। जैसे—'कथं नाम मौनमेवापण्डितानामज्ञताया आच्छादनं भवितुमर्हति विदुषां समाजे, तिलतण्डुलयोः स्पष्टं पृथग्दर्शनात्।'

४२. **तुलोन्नमनन्यायः**—इस न्याय का अर्थ है—तुला को उठाने की कहावत। आशय यह है कि जब तुला का एक पलड़ा हाथ से उठाया जाता है तब दूसरा स्वयमेव नीचे चला जाता है। इसी प्रकार जहाँ एक क्रिया से दूसरी क्रिया करना भी अभिप्रेत होता है वहाँ इस न्याय का व्यवहार होता है। जैसे—'आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्, तेन हि तुलोन्नयनन्यायेन दुष्टनाशो जायते देवप्रसादश्च।'

४३. **तृणभक्षणन्यायः**—इस न्याय का शब्दार्थ है—तिनका खाने का न्याय। भारत में यह रीति रही है कि जब कोई व्यक्ति किसी के सम्मुख दाँतों से तिनका दबा लेता था तब इसका आशय होता था—पराजय की स्वीकृति। ऐसी दशा में वह अवध्य माना जाता है। हिन्दी में यह उक्ति 'दाँतों तले तिनका दबाना' के रूप में प्रचलित है। पराजय की स्वीकृति के अर्थ में इसका प्रयोग यों होता है—'आर्यैः पराजिता रिपवः खलु तृणभक्षणन्यायेन निजप्राणानरक्षन्।'

४४. **दग्धेन्धनवह्निन्यायः**—इस न्याय का अर्थ है—उस अग्नि का दृष्टान्त जो ईंधन को जलाकर स्वयं भी बुझ गई हो। इसी प्रकार जहाँ कोई वस्तु अपने कार्य को सम्पन्न कर स्वयं भी समाप्त हो जाए, वहाँ यह न्याय प्रयुक्त होता है। 'जलकतकरेणुन्याय' का आशय भी ऐसा ही है। यथा—'पाण्डवानां कोपः दुर्योधनादीन् विनाश्य दग्धेन्धनवह्निन्यायेन शान्तः।'

४५. **देहलीदीपकन्यायः**—देहलीदीपकन्याय अर्थात् दहलीज में रखे हुये दीपक का न्याय। कमरे के कोने में रखा हुआ दीपक तो कमरे को ही आलोकित करता है परन्तु दहलीज पर रखा हुआ अन्दर और बाहर दोनों ओर प्रकाश देता है। इसी प्रकार जहाँ कोई शब्द, वाक्यांश या कोई अन्य वस्तु दो तरफ अपना प्रभाव डाल रही हो, वहाँ यह न्याय प्रयुक्त होता है। उदाहरण—'भवति हि पितृतर्पणार्थं अर्पितस्य भोजनस्यातिथ्युपकारकत्वं देहलीदीपकन्यायेन।'

४६. **धान्यपलालन्यायः**—इस न्याय का अर्थ है—अनाज और भूसे का दृष्टान्त। जिस प्रकार लोग अनाज को ग्रहण कर लेते हैं और भूसे को त्याग देते हैं, उसी प्रकार जहाँ ससार वस्तु को लिया तथा निस्सार को छोड़ दिया जाता है, वहाँ इस न्याय का व्यवहार होता है। जैसे—'ग्राह्यो बुधैः सार अपास्य फल्गु-धान्य-पलालन्यायेन।'

४७. **नष्टाश्वदग्धरथन्यायः**—इस न्याय का अर्थ है, लुप्त घोड़ों और जले रथ की कहावत। कहावत की आधार-कथा इस प्रकार है कि दो यात्री अपने-अपने रथों में यात्रा करते हुए रात को एक गाँव में ठहरे। दैवयोग से रात को गाँव में आग लगी जिससे एक के घोड़े लुप्त हो गये और दूसरे का रथ जल गया। तब एक के घोड़ों को दूसरे के रथ में जोड़ दिया गया और यात्रा जारी रही। इसी प्रकार यह न्याय वहाँ व्यवहृत होता है जहाँ पारस्परिक लाभ के लिये मिल-जुलकर काम किया जाए। जैसे—'अपट्ठुरहमितिहासे तथा पुनस्त्वं तु गणिते, मन्ये नष्टाश्वदग्धरथन्यायेनैवावां परीक्षामुत्तरिष्यावः।'

४८. नासिकाग्रेण कर्णमूलकर्षणन्याय:—इस न्याय का शब्दार्थ है—नाक की नोक से कान के अधोभाग को खींचने की कहावत। जैसे नाक के अग्रभाग से कान के निचले भाग को खींचना असम्भव है, वैसे ही अशक्य विषयों में यह न्याय प्रयुक्त किया जाता है। यथा—'यो वै विद्यार्थी परिश्रमं विनैव विद्वान् भवितुमिच्छति, स खलु नासिकाग्रेण कर्णमूलं कर्षति।'

४९. नृपनापितपुत्रन्याय:—नृपनापितपुत्रन्याय अर्थात् राजा और नाई के बेटे की कहावत। कहते हैं, एक राजा ने अपने नाई को राज्य भर में से सुन्दरतम बालक लाने का आदेश दिया। वह नाई सारे देश में बहुत घूमा-फिरा परन्तु उसे ऐसा कोई बालक दिखाई न दिया जैसा कि राजा चाहता था। विवश होकर वह घर लौट आया। उसका अपना पुत्र न सुरूप था न सुलक्षण परन्तु उसे वही सुन्दरतम प्रतीत हुआ। इसलिये वह उसे ही लेकर राजा के समक्ष जा उपस्थित हुआ। पहले तो राजा, यह समझ कर कि यह मेरा उपहास कर रहा है, क्रुद्ध हुआ; परन्तु कुछ सोचने पर उसे इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का बोध हुआ कि प्रत्येक व्यक्ति आत्मीय पदार्थ को ही सर्वोत्तम समझता है। अतः इस न्याय का प्रयोग उन्हीं अवसरों पर होता है जिनमें कोई व्यक्ति अपनी बुरी वस्तु को भी अच्छी समझता है। जैसे—'अकाव्यमपि स्वं कुकवयः नृपनापितपुत्रन्यायेन सत्काव्यपदे गणयन्ति।'

५०. पंकप्रक्षालनन्याय:—पंकप्रक्षालनन्याय अर्थात् कीचड़ धोने का न्याय। शरीर पर लगे कीचड़ को सभ्य मनुष्य तुरन्त धो डालता है। परन्तु उससे कहीं अच्छी बात यह है कि कीचड़ लगने ही न दिया जाय। इसी प्रकार परिस्थितियों से पहले ही बचना उत्तम है, जिनमें पड़ने के पश्चात् फिर उनके प्रभाव को मिटाने का यत्न किया जाय। जैसे—'पश्चात्त्यागाद्धि वित्तस्य वरं पूर्वमसङ्ग्रहः। प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम्।'

५१. पंग्वंधन्याय:—इस न्याय का अर्थ है लँगड़े और अंधे की कहावत। न अंधा मार्ग देख सकता है न पंगु पथ पर चल सकता है। परन्तु यदि पंगु अंधे के कंधों पर बैठ जाय तो दोनों निर्विघ्न यात्रा कर सकते हैं। इसी प्रकार जहाँ पारस्परिक लाभार्थ सहयोग किया जाय, वहाँ उक्त न्याय प्रयुक्त किया जाता है। यथा—'सुवक्ताऽपि देवदत्तो न पण्डितः, सुपण्डितोऽपि यज्ञदत्तो वक्तृत्वविहीनः, तथापि तौ पंग्वन्धन्यायेन संगत्य स्वदेशसेवार्थं संलग्नौ दृश्येते।'

५२. पिष्टपेषणन्याय:—पिष्टपेषणन्याय अर्थात् पीसी हुई वस्तु को पुनः पीसने का न्याय। गेहूँ, मकई आदि को तो पीसा जाता है परन्तु उनके आटे को पीसना निरर्थक होता है। साथ ही वह पेषण पेषक की मूर्खता का द्योतक माना जाता है। इसी प्रकार के अनावश्यक और अनर्थक कार्यों के सम्बन्ध में उक्त न्याय का प्रयोग इस प्रकार किया जाता है—'महान् दोष एवायं यदिदमुक्तस्य पुनः पुनर्वचनम्, पिष्टपेषणं हि तत्।'

५३. पुष्टलगुडन्याय:—इस न्याय का अर्थ है, मोटे डंडे का दृष्टान्त। आशय यह है कि यदि भौंकने वाले कुत्ते की ओर मोटा डंडा फेंका जाय तो वह संभवतः दूसरे कुत्तों को भी लग कर शान्त कर देगा। इसी प्रकार जहाँ एक क्रिया से एकाधिक कार्यों की सिद्धि हो जाय, वहाँ इस न्याय का प्रयोग होता है। जैसे—'हीरोशीमानागासाकीनगरयोरणुबमाभ्यां विध्वस्तयोर्महायुद्धं पुष्टलगुडन्यायेन निमिषेण समाप्तिमगात्।'

५४. प्रधानमल्लनिबर्हणन्याय:—इस न्याय का अर्थ है, मुख्य शत्रु के विनाश की कहावत। आशय यह है कि जब प्रबलतम वैरी का विनाश कर दिया जाता है तब सामान्य वैरी स्वयमेव वश में हो जाते हैं। इसी प्रकार जब भारी बाधाएँ मिटा दी जाती हैं तब सामान्य विघ्न बाधक नहीं बन सकते। जैसे—'हतयोर्भीष्मद्रोणयोर्निश्चित एवाभूत् पाण्डवानां विजयः प्रधानमल्लनिबर्हणन्यायेन।'

५५. **प्रपानकरसन्याय :**—प्रपानकरसन्याय अर्थात् शर्बत की उपमा। शर्बत बनाने के लिए अनेक द्रव्यों को मिश्रित करना पड़ता है। शर्बत का स्वाद उनमें से किसी एक के भी तुल्य नहीं होता। इसी प्रकार जहाँ अनेक वस्तुओं के संयोग से एक विलक्षण पदार्थ निर्मित हो जाय वहाँ यह न्याय प्रयुक्त किया जाता है। यथा—'अभिमन्युः किल प्रपानकरसन्यायेन वृष्णींश्च पाण्डवांश्च गुणैरत्यरिच्यत।'

५६. **फलवत्सहकारन्याय :**—इस न्याय का अर्थ है—आम के फलित पेड़ का दृष्टान्त। आम का फलवान् वृक्ष फल ही नहीं देता, थके-माँदे यात्रियों को सुगन्ध और छाया भी प्रदान करता है। इसी प्रकार जहाँ कोई क्रिया अभीष्ट फल के अतिरिक्त भी कोई फल दे, वहाँ इस न्याय का प्रयोग किया जाता है। यथा—'पुत्रोत्पत्तिर्हि नाम प्रस्नवयित्री मातृवक्षसः, प्रशमयित्री पितृनेत्रयोर्विकाशयित्री च भवति वंशस्य फलवत्सहकारन्यायेन।'

५७. **बहुराजदेशन्याय :**—इस न्याय का शब्दार्थ है—अनेक राजाओं के देश की कहावत। जहाँ एकाधिक राजाओं का शासन होता है वहाँ उनकी परस्पर विरोधी आज्ञाओं के कारण प्रजा अति पीड़ित हो उठती है। यथा—'यस्मिन् कुले मातापित्रोर्वैमत्यं विद्यते तत्र नितरां दुःखिता भवति संततिर्बहुराजकदेशवत्।'

५८. **बीजाङ्कुरन्याय :**—बीजांकुरन्याय अर्थात् बीज और अँखुए का न्याय। इस न्याय का उद्गम बीज और अंकुर के पारस्परिक कारण-कार्यभाव से हुआ है। बीज से अंकुर उत्पन्न होता है अतः बीज कारण है, अंकुर कार्य। परन्तु आगे चलकर उसी अंकुर से बीज भी उत्पन्न होते हैं; इसलिए अंकुर कारण और बीज कार्य बन जाता है। इस प्रकार जहाँ दो पदार्थ एक दूसरे के कारण और कार्य भी हों, वहाँ यह न्याय प्रयुक्त किया जाता है। जैसे—स्वास्थ्येन वित्तमधिगम्यते वित्तेन च पुनः स्वास्थ्यं बीजाङ्कुरवत्।'

५९. **मण्डूकप्लुतिन्याय :**—उक्त न्याय का अर्थ है, मेढक की छलाँग की लोकोक्ति। मेढक सर्पवत् समग्र मार्ग का स्पर्श करता हुआ नहीं चलता, छलाँगें लगाता जाता है, जिससे मध्यवर्ती स्थान अस्पृष्ट रह जाता है। इसी प्रकार जहाँ कोई नियम सब पर समानरूप से लागू न हो, बीच-बीच में कई वस्तुओं को छोड़ता जाए, अथवा कोई काम बीच-बीच में छोड़ कर किया जाए वहाँ इस न्याय का प्रयोग होता है। यथा—'अस्माकमध्यापकः पाठ्यपुस्तकं मण्डूकप्लुतिन्यायेन पाठयति न तु यथाक्रमम्।'

६०. **मात्स्यन्याय :**—मात्स्य न्याय अर्थात् मछलियों का दृष्टान्त। प्रायः यह देखा जाता है कि बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियों को हड़प जाती हैं। इसी प्रकार जहाँ बलवान् निर्बल को मारने या सताने लग जाएँ वहाँ इस न्याय का प्रयोग किया जाता है। हिन्दी की लोकोक्ति 'जिसकी लाठी, उसकी भैंस' भी इसी आशय को व्यक्त करती है। उदाहरण देखिए—'सुशासकाभावे यदि राष्ट्रे मात्स्यन्यायः प्रवर्तेत तर्हि किमाश्चर्यम्।'

६१. **रथकारन्याय :**—इस न्याय का अर्थ है—रथकार (रथ बनानेवाले) का दृष्टान्त। शास्त्र में कहा गया है कि रथकार वर्षा ऋतु में अग्नि की स्थापना करे। प्रश्न उठता है, रथकार का अर्थ रथ बनाने वाला कोई भी व्यक्ति है या विशेष उपजाति का मनुष्य। जैमिनि ने निर्णय किया है कि केवल जातिविशेष का व्यक्ति ही। इस प्रकार इस न्याय का भाव यह है कि शब्दों का रूढ़ या प्रचलित अर्थ यौगिक अर्थों से बलवान् होता है। यथा—'अद्य तु रथकारन्यायेन कार्यपटुरेव कुशलो मन्यते न पूर्ववत् गुरोः कृते कुशानयनदक्ष एव।'

६२. **राजपुरप्रवेशन्याय :**—इस न्याय का शब्दार्थ है—राजधानी में प्रवेश का दृष्टान्त। राजपुर में प्रवेश करने का नियम यह है कि पंक्ति बनाकर पर्याय से प्रविष्ट हुआ जाए। जो उच्छृङ्खल

इस नियम को भंग करता है, उसके पिटने की आशंका रहती है। इसी प्रकार जहाँ किसी कार्य को नियमानुसार करना अभीष्ट हो, वहाँ इस न्याय का प्रयोग करते हैं। दृष्टान्त लीजिए—'यस्मिन् तु विद्यालये छात्रा राजपुरप्रवेशन्यायेन स्वकक्षाः प्रविशन्ति न तत्र कोलाहलो जायते।'

६३. **रुमाक्षिप्तकाष्ठन्यायः**—इस न्याय का अर्थ है, नमक की खान और लकड़ी का दृष्टान्त। यह प्रसिद्ध है कि जो वस्तु नमक की खान में फेंकी जाती है, नमक बन जाती है। इसी प्रकार जहाँ कुसंगति के प्रबल प्रभाव से अन्य वस्तु भी वैसी बन जाए, वहाँ इस न्याय का प्रयोग उचित है। यथा—'विनीता अपि जना अधिकारं प्राप्य रुमाक्षिप्तकाष्ठन्यायेन दृप्ता भवन्ति।'

६४. **लोहचुंबकन्यायः**—लोहचुम्बकन्याय अर्थात् लोहे और चुम्बक का न्याय। यह न्याय उस सम्बन्ध को व्यक्त करता है जिसके कारण दो पदार्थ दूर होते हुए भी, स्वभावतः एक-दूसरे के समीप जाने का उद्योग करते हैं। जैसे—'दूरस्था अपि सज्जना लोहचुम्बकवत् मिथो मिलितुं वाञ्छन्ति।'

६५. **बकबन्धनन्यायः**—इस न्याय का अर्थ है, बगुले को पकड़ने का दृष्टान्त। किसी ने बगुला पकड़ने की रीति यह बताई कि जब बगुला बैठा हो तो चुपके से उसके सिर पर मक्खन रख देना चाहिए। जब मक्खन धूप से पिघल कर उसकी आँखों में पड़ेगा तो वह अन्धा हो जाएगा और झट पकड़ लिया जाएगा। वस्तुतः यह विधि हास्यास्पद है क्योंकि बगुला तभी क्यों न पकड़ लिया जाए जब उसके सिर पर मक्खन रखा जाए। इसी प्रकार जहाँ सहज-सरल विधि को छोड़ कर किसी हास्यास्पद ढंग को स्वीकृत किया जाता वहाँ उक्त न्याय प्रयुक्त होता है। जैसे—'बकबन्धनन्यायपर्याय एवायं यद्गलघण्टिकारावेण अवगते मार्जारागमे मूषाणा-मात्मरक्षाविचारः।'

६६. **वनसिंहन्यायः**—इस न्याय का शब्दार्थ है—वन और सिंह का दृष्टान्त। सिंह न हो तो लोग वन को ही काट डालें और वन न हो तो सिंह को ही मार डालें। ये दोनों वस्तुतः एक-दूसरे के रक्षक हैं। इसी प्रकार जहाँ पदार्थ परस्पर रक्षक हों वहाँ इस न्याय का प्रयोग किया जाता है। जैसे—'न जातु सेव्यसेवकौ अन्योऽन्यं हन्तुं पारयतः-वनसिंहवदन्योऽन्याश्रयित्वात्।'

६७. **वह्निधूमन्यायः**—वह्निधूमन्याय अर्थात् अग्नि और धूएँ के निरन्तर साथ-साथ रहने का न्याय। जहाँ धूआँ होता है वहाँ अग्नि होती ही है। इसी प्रकार जहाँ एक पदार्थ का दूसरे से अनिवार्य साहचर्य बताया जाए वहाँ यह न्याय व्यवहृत होता है। जैसे—'यत्र योगेश्वरः कृष्णः यत्र च धनुर्धरः पार्थः, तत्र विजयो वह्निधूमन्यायेन निश्चित एव।'

६८. **विषकृमिन्यायः**—विषकृमिन्याय अर्थात् विष के कीड़ों का न्याय। साधारण प्राणी तो विष के प्रभाव से मर जाते हैं, परन्तु विष के कीड़े विष में ही उत्पन्न होते हैं, उसी को खाते हैं और फिर भी जीवित रहते हैं। इस न्याय का प्रयोग उन अवसरों पर होता है जिन पर सामान्य प्राणी तो प्राणों से हाथ धो बैठते हैं परन्तु व्यक्तिविशेष सुरक्षित रहते हैं। जैसे—'हरिजनानां कर्म कुर्वन्तः सामान्यास्तु अचिरात् कालकवलिता भवेयुः ते च हरिजनाः पुनः विषकृमिन्यायेन दीर्घजीविनो भवन्ति।'

६९. **विषवृक्षन्यायः**—विषवृक्षन्याय अर्थात् विषैले पेड़ का न्याय। कालिदास ने 'कुमारसम्भव' में कहा है—'विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसांप्रतम्' अर्थात् यदि विष का वृक्ष भी स्वयं लगाया और पाला-पोसा गया हो तो उसे काटना या उखाड़ना उचित नहीं होता। इसी प्रकार जिस व्यक्ति का स्वयं पालन-पोषण किया हो, वह बड़ा होने पर अनिष्टकर भी सिद्ध हो, तो भी उसका विध्वंस समीचीन नहीं। यही इस न्याय का आशय है। उदाहरण द्रष्टव्य है—'विषवृक्षन्यायमनुसरता पित्रा कुपुत्रस्याप्यहितं कर्तुं न पार्यते।'

७०. वीचितरंगन्याय :—वीचितरंगन्याय अर्थात् तरंग और तरंग का न्याय। नदी, सरोवर, समुद्र आदि में हम देखते हैं कि तरंगें क्रमशः एक-दूसरी को तब तक आगे-आगे ढकेलती जाती हैं जब तक वे सब तट तक नहीं जा पहुँचतीं। इसी प्रकार जब कुछ वस्तुएँ या व्यक्ति एक-दूसरे की सहायता से गन्तव्य तक जा पहुँचते हैं, तब इस न्याय का निम्नलिखित प्रकार से प्रयोग किया जाता है—'वीचितरंगन्यायेन अन्योऽन्योपकारि खलु सकलमिह जीवितम्।'

७१ वृद्धकुमारीवाक्य(वर)न्याय :—वृद्धकुमारीवाक्यन्याय अर्थात् बूढ़ी कन्या के वर का न्याय। पतंजलि ने महाभाष्य में लिखा है कि जब इन्द्र ने एक बूढ़ी कन्या को वर माँगने को कहा तब वह बोली—'पुत्रा मे बहुक्षीरघृतमोदनं काञ्चनपात्र्यां भुञ्जीरन्' अर्थात् मेरे पुत्र सुवर्ण के पात्रों में प्रभूत दूध और घी से युक्त चावल खायें। अब यदि यह वर प्राप्त हो जाए तो पति, सन्तान, गौ, दूध, घी, सुवर्ण आदि सभी पदार्थ स्वतः एव प्राप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार जहाँ कोई ऐसी वस्तु माँगी जाए जिसके साथ अनेक उपयोगी द्रव्यों की प्राप्ति अनिवार्य हो जाए, वहाँ इस न्याय का प्रयोग होगा। जैसे—'स्वपौत्रं राजसिंहासनस्थमीक्षितुमिच्छामीति वरं देवं याचमानेनान्धवृद्धेन आत्मनः कृते यौवनं नेत्रे पत्नी पुत्रः पौत्रश्च वृतः।'

७२. व्यालनकुलन्याय :—इस न्याय का अर्थ है—साँप और नेवले की कहावत। साँप और नेवले में जन्मजात वैर होता है। वे जहाँ एक-दूसरे को देखते हैं, लड़ पड़ते हैं। उन्हीं की तरह जब दो वस्तुओं में स्वभाविक वैर हो तब व्यालनकुलन्याय (अहिनकुलन्याय) का व्यवहार होता है। यथा—'अद्यत्वे तु रूसामरीकयोर्व्यालनकुलं दृश्यते।'

७३. शतपत्रपत्रशतभेदन्याय :—उक्त न्याय का अर्थ है—कमल के सौ पत्रों को छेदने का दृष्टान्त। जब कोई व्यक्ति कमल के सौ कोमल पत्रों को सूए से छेदता है तब ऐसा लगता है कि सब पत्र एक-साथ ही छिद गये हैं। परन्तु वस्तुतः छिदते एक-दूसरे के अनन्तर ही हैं। इसी प्रकार जहाँ अनेक क्रमशः होने वाली क्रियाओं का एक साथ होना कहा जाता है, वहाँ यह न्याय व्यवहृत होता है। जैसे—'पतिं मृतं श्रुत्वा सा साध्वी कम्पिता मूर्च्छिता मृता च शत-पत्रपत्रशतभेदन्यायेन।'

७४. शलभन्याय :—इस न्याय का अर्थ है पतंगे का दृष्टान्त। मूर्ख पतंगा जलते हुए दीपक को देख ऐसा मुग्ध होता है कि प्राणों तक की चिन्ता नहीं करता। इसी प्रकार मूर्ख लोग विषयों से आकृष्ट होकर प्राणों से हाथ धो बैठते हैं। आजकल इसका प्रयोग प्रशंसा के लिये भी किया जाता है। दोनों के दृष्टान्त एक ही वाक्य में देखें—'विषयेषु शलभायन्ते मूढाः, प्रमदासु कामुकाः, राष्ट्रसेवायां च राष्ट्रभक्ताः।'

७५. शाखाचन्द्रन्याय :—शाखाचन्द्रन्याय अर्थात् वृक्ष की शाखा और चाँद का न्याय। आकाश में चन्द्र तो बहुत दूर होता है परन्तु प्रतिपदा आदि के दिन किसी को दिखाने के लिये प्रायः कहा जाता है—देखो, वह उस वृक्ष की शाखा के ऊपर है। इसी प्रकार जहाँ कोई पदार्थ हो तो बहुत दूरवर्त्ती पर उसको दिखाने के लिये ऐसे पदार्थ की ओर संकेत किया जाय जो उसके समीप प्रतीत होता हो, वहाँ यह न्याय प्रयुक्त होता है। जैसे—'शाखाचन्द्रन्यायेन पैरिसनगरमपि रोम-समीपवर्तिनमेव ज्ञापयति कोऽपि मानचित्रे।'

७६ शिरोवेष्टनेन नासिकास्पर्शन्याय :—उक्त न्याय का अर्थ है—बाहु को सिर के पीछे से लाकर नाक को छूने का दृष्टान्त। नाक को सामने से छूना सुकर है, बाहु पीछे से लाकर छूना दुष्कर। जब उद्देश्य केवल नासिकास्पर्श हो तो बाहु को सिर के पीछे से लाकर छूने में कोई लाभ नहीं है। इसी प्रकार कई लोग किसी कार्य को सीधे ढङ्ग से नहीं करते, घुमा-फिराकर व्यर्थ कष्ट

सहते या देते हैं। ऐसे ही अवसरों पर उक्त न्याय प्रयुक्त होता है। यथा—'को लाभोऽनेन शिरोवेष्टनेन नासिकास्पर्शेन, प्रकृतं स्पष्टं ब्रूहि।'

७७. श्वपुच्छोन्नामनन्यायः—इस न्याय का शब्दार्थ है—कुत्ते की पूँछ को सीधा करने का दृष्टान्त। कुत्ते की पूँछ अनेक यत्न करने पर भी सीधी नहीं होती; प्रयत्न करने वाले का श्रम व्यर्थ ही सिद्ध होता है। इसी प्रकार जहाँ काम के लिये किया हुआ उद्योग सर्वथा निष्फल रहे, वहाँ यह न्याय व्यवहृत होता है। यथा—'श्वपुच्छोन्नामनमेवैतद् महात्मा गांधी अकार्षीद् यद् मुस्लिम-लीगिनः प्रेम्णा वशीकर्तुमयतत।'

७८. शवोद्वर्तनन्यायः—इस न्याय का शब्दार्थ है—मृतक को उबटन लगाने का दृष्टान्त। सुगन्धित द्रव्य सजीव शरीर के शोभावर्द्धक हैं, निर्जीव के नहीं। इसी प्रकार जहाँ सर्वथा निष्फल उद्योग किया जाता है, वहाँ यह न्याय प्रयुक्त होता है। यथा—'पाकिस्ताननिर्माणानन्तरं मुस्लिमलीगस्य पुनः भारते संस्थापनं शवोद्वर्तनमेव।'

७९. सिंहावलोकनन्यायः—सिंहावलोकनन्याय अर्थात् सिंह के समान देखने का न्याय। चलता हुआ सिंह सामने तो देखता ही है, थोड़ी-थोड़ी देर बाद पीछे भी दृष्टिपात कर लेता है कि कोई भक्ष्य जन्तु पहुँच के भीतर पीछे भी है या नहीं। इसी प्रकार जब कोई व्यक्ति आगे-आगे कार्य करता हुआ पिछले कार्य पर भी कुछ दृक्पात करता है, तब सिंहावलोकन-न्याय का प्रयोग होता है। जैसे—'सोत्साहैरपि छात्रैरधीतस्य सिंहावलोकनं कर्तव्यमेव।'

८०. सिकतातैलन्यायः—अर्थात् रेत से तेल निकालने की कहावत। जैसे गधे या शश के सिर पर सींग नहीं निकलते वैसे ही रेत से तेल की उत्पत्ति असम्भव है। इसी प्रकार की असम्भव बातों के लिए यह न्याय प्रयुक्त होता है। यथा—'प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्ताराधनं कविभिः सिकतासु तैलस्योपलब्ध्या उपमीयते।'

८१. सुन्दोपसुन्दन्यायः—इस न्याय का अर्थ है—सुन्द और उपसुन्द की उपमा। महाभारत के आदिपर्व (अध्याय २०९-२१२) में सुन्दोपसुन्द नाम के दो अजेय असुर भाइयों की कथा आती है। उन्हें नष्ट करने के उद्देश्य से ब्रह्मा ने विश्वकर्मा को एक अद्वितीय सुन्दरी (तिलोत्तमा) निर्माण करने को कहा। ब्रह्मा ने तिलोत्तमा को उन भाइयों के पास कैलासोद्यान में भेजा। दोनों उसे देख मुग्ध हो गये और लगे अपनी-अपनी ओर खींचने। अन्ततः दोनों क्रुद्ध होकर लड़ पड़े और दोनों ही मर गये। इन्हीं के समान जब दो समान बल वाले पदार्थ एक दूसरे के नाशक हों, तब इस न्याय का प्रयोग-स्थल होता है। जैसे—'यावद्रूसामरीकाराष्ट्रे परस्परं युध्यमाने सुन्दोपसुन्दवत् न नश्यतः, शान्तिस्तावत् असिद्धस्वप्न एव।'

८२. सूचीकटाहन्यायः—सूचीकटाहन्याय अर्थात् सूई और कड़ाहे का न्याय। किसी लोहार के पास जब एक व्यक्ति कड़ाहा बनवाने जा पहुँचे और दूसरा सूई, तब लोहार पहले सूई बनाता है क्योंकि उसे वह सहज ही अल्प काल में बना लेता है। इसी प्रकार इस न्याय का आशय यह है कि कठिन तथा दीर्घकालसाध्य कार्य पीछे करना चाहिए और सुकर तथा अल्पकालसाध्य कार्य पहले। जैसे—'श्रेणीमध्यापयन् शिक्षकः मुख्याध्यापकादागतां सूचनां, प्रकृतं पाठं स्थगयित्वा, सूचीकटाहन्यायेन प्रथमं श्रावयति।'

८३. सूत्रबद्धशकुनिन्यायः—इस न्याय का अर्थ है—सूत से बँधे हुए पक्षी का दृष्टान्त। सूत से बँधा हुआ पक्षी न इधर-उधर स्वच्छन्द उड़ सकता है, न कहीं यथेष्ट विश्राम कर सकता है। जिस पराधीन व्यक्ति की दशा उसके समान हो, उसके विषय में यह न्याय प्रयुक्त किया जाता है। यथा—'कैकेयीमोहपाशबद्धस्य दशरथस्य दशा सूत्रबद्धशकुनेरिवासीत्।'

८४. सोपानारोहणन्याय:—सोपानारोहणन्याय अर्थात् सीढ़ियाँ चढ़ने का दृष्टान्त। जैसे मनुष्य छत पर एकाएक नहीं जा पहुँचता, एक-एक सीढ़ी चढ़ कर ही पहुँचता है, वैसे ही ज्ञानादि की प्राप्ति भी क्रमशः ही होती है। ऐसे ही अवसर इस न्याय के प्रयोगार्थ उचित हैं। जैसे—'सोपानारोहणन्यायेनैव भवति विद्योपचयो विद्यार्थिनां, धनवृद्धिश्च सज्जनानाम्।'

८५. स्थालीपुलाकन्याय:—स्थालीपुलाकन्याय अर्थात् देगचे और पुलाव का न्याय। जब किसी देगचे में चावल पकाये जाते हैं तब पाचक प्रत्येक दाने को निकाल कर नहीं देखता कि वह गल गया है या नहीं। दो-चार दाने देखकर ही अनुमान कर लेता है कि सब के सब गल गये या कुछ कसर है। इसी प्रकार जहाँ किसी समुदाय के दो-चार व्यक्तियों से सबके सम्बन्ध में कुछ अनुमान किया जाता है, वहाँ इस न्याय का इस प्रकार व्यवहार किया जाता है—'विद्यालय-निरीक्षकाः स्थालीपुलाकन्यायेनैव विद्यार्थिनां योग्यतां परीक्षन्ते।'

८६. स्थावरजंगमविषन्याय:—अर्थ है—स्थावर और जंगम विष का दृष्टान्त। पौधों और खनिज द्रव्यों के विष स्थावर विष कहलाते हैं तथा प्राणियों के विष जंगम विष। कहते हैं, विष को विष नष्ट करता है जैसे कि महाभारत की कथा में भीमसेन को दुर्योधन द्वारा दिया हुआ स्थावर विष नदी में साँपों के जंगम विष से दूर हो गया था। इसी प्रकार जहाँ एक वस्तु का प्रतिकार दूसरी से हो जाय, वहाँ यह न्याय प्रयोक्तव्य है। यथा—'वर्तमाने बहूनां रोगाणां चिकित्सा स्थावरजंगमविषन्यायेनैव विधीयते।'

८७. स्थूणानिखननन्याय:—स्थूणानिखननन्याय अर्थात् खंबा गाड़ने का न्याय। जैसे भूमि में खंबा गाड़ना हो तो उसे बार-बार हिलाकर गहरा ठोका जाता है; वैसे ही अपने पक्ष के सुसमर्थन के लिए जब कोई वक्ता, लेखक आदि अनेक युक्तियाँ, दृष्टान्त आदि प्रस्तुत करता है तब यह न्याय प्रयुक्त होता है। यथा—'स्थूणानिखननन्यायेन समर्थयति प्रवक्ता स्वकीयं पक्षं दृष्टान्तपरम्परया।'

८८. स्वामिभृत्यन्याय:—स्वामिभृत्यन्याय अर्थात् मालिक और नौकर का न्याय। स्वामी और सेवक में पोषक तथा पोष्य या धारक और धार्य का सम्बन्ध होता है। इसी प्रकार का सम्बन्ध जहाँ दो वस्तुओं या व्यक्तियों में दिखाई दे, वहाँ उक्त न्याय व्यवहृत होता है। यथा—'इह लोके सर्वत्र जीवेश्वरयोः स्वामिभृत्यन्याय इव दृश्यते।'

८९. स्वेदजनिमित्तेन शाकटत्यागन्याय:—इस न्याय का अर्थ है—पसीने से उत्पन्न कीड़ों के कारण वस्त्र फेंक देने का न्याय। इसी को कहीं पर 'यूकाभिया कन्थात्यागन्यायः' भी कहते हैं जिसका हिन्दी रूपान्तर 'जुओं के डर से गुदड़ी नहीं फेंकी जाती' है। आशय यह है कि सामान्य भयों से भीत होकर भारी हानि सहन करना बुद्धिमत्ता नहीं है। यथा—'परीक्षायां वैफल्यमपि संभवतीति भयेन परीक्षायां छात्रा नोपविशेयुरिति न, स्वेदजनिमित्तेन शाकट-त्यागन्यायेन।'

९०. ह्रदनक्रन्याय:—ह्रदनक्रन्याय का अर्थ है—झील और मगर का दृष्टान्त। इसका आशय 'वनसिंहन्याय' के समान है। विस्तारार्थ वहीं देखिए।